

भगवान् महावीर की

साधना

[श्री आचाराङ्ग सूत्र का नवम अध्ययन]



— सम्पादक —

जैनाचार्य पूज्य श्री जयमल्लजी महाराज

के सम्प्रदाय के स्वर्गीय श्रद्धेय

स्वामीजी श्री जोरावरमलजी

महाराज के सुशिष्य

पं० रत्न मुनिश्री मिश्रीमलजी

महाराज (मधुकर)

न्याय-साहित्यतीर्थ





प्रकाशक —
श्री आत्म जागृति कार्यालय
ब्यावर (राज०)

प्रथमावृत्ति १० ० | विक्रम सम्वत् २००७ वीर सम्वत् २४७७ | मूल्य आना ।=)

मुद्रक —
श्री जालमसिंह के प्रबन्ध से
गुरुकुल प्रिंटिंग प्रेस,
ब्यावरमें मुद्रित

समर्पण

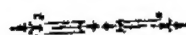


जिनका बन्धुत्व पूर्ण सहयोग मेरे
विकास में सदा सहायक रहा है,
मेरी ही उन्नति को
जिन्होंने अपना लक्ष्य बना लिया है उन,
परमादरणीय गुरुभ्राता
मुनिश्री व्रजलालजी महाराज के
कर-कमलों में

विनीत—

—मधुकर

दो शब्द



प्रस्तुत पुस्तक में भगवान् महावीर की साधना के जीवन का वर्णन है। भगवान् महावीर की साधना बड़ी कठोर थी। वे अपनी साधना के समय इतने सुदृढ़, सजग और सहनशील बने रहे कि आज उनकी साधना के जीवन इतिवृत्त को पढ़कर पाठकों को सहसा आश्चर्यचकित होना पड़ता है।

एक साधक अपनी साधना के समय जितना मजबूत बना रहता है उतना ही वह आगे जाकर दुनिया में एक महान् आदर्श बनता है।

भगवान महावीर की साधना के वर्णन को पढ़कर पाठक सोच सकते हैं कि वे एक कितने कठोर साधक थे।

साधना अवस्था के समय भगवान कैसे निस्पृह रहे? उनकी तपस्या कैसी रही? भयंकर उपसर्ग घोर परीषह और अतुल आपत्तियों के आने पर भी वे कैसे गम्भीर और अचल बने रहे? यह सारा वर्णन आचाराङ्ग सूत्र के नौवें अध्ययन में आता है। यहाँ इस पुस्तक में नौवें अध्ययन के चारों ही उद्देशक यथाक्रमसे रखे गए हैं।

पाठकों से अनुरोध है कि एक बार इस पुस्तक का अवश्य अध्ययन करें और मेरे परिश्रम को सफल करें।

रक्षा बन्धन
सं० २००६
तीवरी (मारवाड़)

मुनि मधुकर जैन

प्रस्तावना



आचाराङ्ग सूत्र के नवें अध्ययन में भगवान् महावीर की साधना का संक्षिप्त वर्णन है। दीक्षा लेने के बाद कैवल्य-प्राप्ति तक उनका जीवन किस प्रकार का रहा, व कैसे-कैसे विकट प्रदेशों में गए और वहाँ कैसे कैसे भयङ्कर कष्ट सहे, इसका दिग्दर्शन इस प्रकरण में कराया गया है।

साढे बारह वर्ष के लम्बे समय में भगवान ने केवल ३४६ दिन आहार का सेवन किया और वह भी दिन में एक बार। शेष दिन विविध प्रकार की उग्र तपस्याओं में बीते। लोगों ने उन्हें पीटा कानों में कील ठोक दी, उन पर शिकारी कुत्ते छोडे, किन्तु भगवान् अपने मार्ग से विचलित न हुए। उन्होंने मन में भी किसी के प्रति द्वेष न आने दिया और न अपनी पूर्व निश्चितचर्या में किसी प्रकार का परिवर्तन किया।

वर्द्धमान महावीर एक राजकुमार थे। सुखों में पले थे। सभी प्रकार के भोग विलास उनके इशारों पर नाचते थे। तीस वर्ष की युवा अवस्था में, जब साधारण पुरुष, विषयभोगों में अँधे बने रहते हैं, महावीर ने कठोर व्रत अपना लिया। उनके हृदय में जो आकांक्षा बाल्यकाल से ही बलवती हो रही थी वे उसकी पूर्ति के लिए राजप्रासाद का परित्याग कर एकान्त वन की ओर चल पड़े। हमें यह समझना है कि उनकी आकांक्षा क्या थी? उनकी साधना का लक्ष्य क्या था? व कहाँ पहुँचना चाहते थे?

महापुरुष अपने ही सुख दुख से सन्तुष्ट नहीं रहा करते। या यों कहिए, उनका अपनपन का दायरा इतना विस्तृत होता है कि उसमें सभी प्राणी, समस्त संसार समा जाता है। वे दुनिया के दुख को अपना दुख समझते हैं और दुनिया के सुख को अपना सुख। संसार में दुखी प्राणियों को देखकर महावीर का हृदय विह्वल हो उठा। वे सोचने लगे कि दुख का मूल कारण क्या है और उसे कैसे दूर किया जा सकता है?

महावीर ने देखा दुख या सुख का आधार बाह्य वस्तुएँ नहीं हैं। उनका आधार आत्मा है। यदि सुन्दर युवती सुख का कारण होती तो रोगविहीन वृद्ध को भी उससे उतना ही सुख मिलना चाहिए जितना एक युवक को मिलता है। यदि धन ही सुख का कारण होता तो रोगी अपना रोग दूर करने के लिए उसे क्यों खरचता? पुत्र, मित्र, धन सम्पत्ति आदि सभी के लिए यही बात है। सुख या दुख वस्तुओं पर निर्भर नहीं है किन्तु हमारे मनोभावों पर निर्भर है। जिस व्यक्ति को हम अपना मित्र मानते हैं उसके मिलने पर सुख होता है। दूसरे ही दिन किसी कारण से यदि उसके साथ लड़ाई हो जाती है तो वह हमारी आँखों को नहीं सुहाता। भूख लगने पर भोजन बड़ा रुचिकर मालूम पड़ता है किन्तु पेट भर जाने पर वही बेस्वाद हो जाता है। यह सब मन के ही खेल हैं।

हमारा उत्थान पतन, उन्नति अवनति, विजय पराजय सभी कुछ इसी पर निर्भर हैं। मार्ग में चलते हुए यदि सामने पहाड़ आ जाय तो वह हट नहीं सकता। वह तो वहीं रहेगा। किन्तु वहाँ हार मानकर वापिस लौट आना या उसे लाघने के लिए कदम आगे बढ़ाते जाना हमारे हाथ की बात है। उस समय हार स्वी

कार करने या न करने में हम स्वतन्त्र हैं। हमारी विजय या पराजय इसी मान्यता पर निर्भर है। पर्वत उसमें कोई महत्व नहीं रखता।

यह सब सोचकर भगवान् इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि मनुष्य को सुख तभी मिल सकता है जब वह परिस्थितियों के सामने झुकना छोड़ दे।

किन्तु कहना जितना सरल होता है उतना करना नहीं। उपदेश देना मामूली बात है किन्तु उसी सिद्धान्त को जीवन में उतारने के लिए महती साधना चाहिए। भगवान् महावीर का यह निश्चय था कि स्वयं प्रयोग किए बिना किसी बात का उपदेश देना खतरे से खाली नहीं है। उपर्युक्त सिद्धान्त को प्रयोग में लाने के लिए वे भिक्षुक बन गए। अपने जीवन को ही उन्होंने प्रयोगशाला बनाया।

सब से पहले उन्होंने शत्रुता पर विजय प्राप्त की। वे हिंसक प्राणियों से भरे जङ्गल में ध्यान लगाकर खड़े हो जाते। सिंह, व्याघ्र आदि आते, उन पर गुर्राते किन्तु वे अपने मन में किसी प्रकार के द्वेष या भय की भावना न आने देते। वे उन्हें अपना मित्र मानकर प्रेम का प्रसार करते। परिणामस्वरूप भयङ्कर पशु अपने आप चले जाते। इसी प्रकार वे क्रूर एवं निर्दय मनुष्यों की बस्ती में पहुँचते। वे लोग भगवान् को मारते पीटते तथा भयङ्कर यातनाएँ देते। किन्तु भगवान् शान्त खड़े रहते। मन में भी किसी प्रकार का द्वेष न आने देते। मारने वाले आश्चर्य में पड़ जाते। कैसा विचित्र पुरुष है! मार खा रहा है किन्तु बचने तक की कोशिश नहीं करता। मुख पर भी कोई उदासी नहीं आने देता। यह तो पहले की तरह ही शान्त और प्रसन्न खड़ा है। उनका हृदय, बदल जाता। वे बिना किसी उपदेश के भगवान्

के चरणों में लोट जाते। इस प्रकार भगवान ने उक्त प्रयोग द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए उसमें प्रेम करना चाहिए। क्रोध, क्षमा से शान्त होता है, क्रोध से नहीं। मान, विनय से विगलित होता है, मान से नहीं। माया, सरलता से नष्ट होती है, माया से नहीं। लोभ, उदारता से हार जाता है, लोभ से नहीं।

आत्मा जब तक मोह में लीन रहता है तभी तक दुखी रहता है। निर्मोही को कभी दुःख नहीं होता। मोह पर विजय प्राप्त करना भगवान महावीर का दूसरा प्रयोग था।

धन सम्पत्ति तथा राजवैभव से तो वे बचपन से ही विरक्त थे। माता, पिता, भाई, बहिन, पत्नी, सन्तान आदि के मोह पर भी उन्होंने विजय प्राप्त की और सब को छोड़कर चल दिए। किन्तु अभी तक एक वस्तु शेष थी। उसके मोह पर विजय प्राप्त करना सरल काम न था। वह वस्तु थी अपना शरीर। शरीर भी आत्मा से भिन्न है, पराया है। इसे भी छोड़ना ही पड़ता है। किन्तु छोड़ना पड़ना दूसरी बात है और स्वयं उसे छोड़ देना दूसरी बात है। भगवान् इसे स्वयं छोड़ देना चाहते थे। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे स्वयं शरीर का नाश कर डालना चाहते थे। यह तो आत्महत्या है। वे चाहते थे शरीर के प्रति मोह न रहे। वह आत्मकल्याण का साधन मात्र रहे किन्तु उसके लिए आत्महित की ओर उपेक्षा न हो। शारीरिक कष्ट आत्मा को विचलित न कर सकें।

किसी मूल्यवान पदार्थ के नष्ट हो जाने पर उसके स्वामी को दुःख होता है। किन्तु दूसरे लोग तटस्थ खड़े रहते हैं। स्वामी के मन में दुःख इसीलिए होता है क्योंकि उस पदार्थ पर उसका ममत्व है। यदि वह ममत्व त्याग दे तो वह भी दूसरे लोगों की तरह

निर्लिप्त और निर्विकार रहकर उस पदार्थ के विनाश को देख सकता है। पुत्र मर जाता है तो मा पछाड़ खाकर गिर पड़ती है, पिता सिसक सिसक कर आँसू बहाता है, बन्धु सहानुभूति दिखाते हैं और अपरिचित निर्विकार खड़े खड़े देखते रहते हैं। इस तारतम्य का कारण मोह का तारतम्य है। जितना मोह अधिक है उतना ही दुःख अधिक होगा।

शरीर के लिए भी यही बात है। व्यक्ति शरीर मे जितना मोह रखेगा, चोट आदि लगने पर उतना ही अधिक कष्ट होगा।

भगवान् महावीर स्वामी मोह पर पूर्ण विजय प्राप्त करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने शरीर से भी ममत्व हटा लिया। उसे दुःखों की भट्टी में स्वयं झोंक दिया। फिर भी वे निर्लिप्त रहे। मन में किसी प्रकार का विकार न आने दिया। इस प्रकार वे अपने दूसरे प्रयोग म भी सफल हुए।

यहाँ प्रश्न हो सकता है—क्या शरीर सुखा देने के लिए है? क्या प्राकृतिक सौन्दर्य नष्ट कर देने के लिए होता है? क्या यह प्रकृति का विरोध नहीं है? क्या प्रकृति का विरोध करके कोई व्यक्ति विकास कर सकता है? भगवान् महावीर ने इन प्रश्नों पर गम्भीर विचार किया था। उपर्युक्त प्रश्न उन्हीं की ओर से हो सकते हैं जो जड वस्तुओं से भिन्न आत्मा का अस्तित्व नहीं मानते। महावीर के सिद्धान्त में जड और चेतन भिन्न २ वस्तुएँ हैं। दोनों विरोधी तत्त्व हैं। चेतन जड से ढँका हुआ है। उसे प्रकट करना मानव जीवन का चरम लक्ष्य है। जड कितना ही सुन्दर हो, हेय है। हम परदे के पीछे बैठे हुए अपने प्रियतम से मिलना चाहते हैं। उसे देखने के लिए हृदय व्याकुल हो रहा है। फिर परदा कितना ही सुन्दर हो हम उसे हटा देना चाहते हैं, उसे फाड डालना चाहते हैं। आत्मतत्त्व पर शरीर एक परदा है। हम उससे जितना मोह करेंगे आत्मतत्त्व से उतना ही दूर रहेंगे।

एक व्यक्ति अपना रोग दूर करने के लिए पैसा पानी की तरह बहा रहा है। एक कंजूस आता है और उसे कहता है, क्या परिश्रम से अर्जित यह धन या ही बहा देने के लिए है? रोगी उत्तर देगा—धन की रक्षा के लिए मैं अपने शरीर को नष्ट नहीं कर सकता। धन वहां तक उपयोगी है जहाँ तक उससे मेरे सुख की वृद्धि हो। दुःख भोग कर पैसा बचाना मूर्खता है। रोगी के लिए जो स्थान धन का है, आत्मार्थी के लिए वही स्थान शरीर का है। आत्मार्थी आत्मा का परमश्रेयस् प्राप्त करना चाहता है। यदि शरीर का मोह उसमें बाधा डालता है तो वह उसका दमन करने में संकोच नहीं करेगा। उसके लिए शरीर वहीं तक उपयोगी है जहाँ तक उससे आत्महित साधन होता है। शारीरिक या भौतिक सौन्दर्य उसके लिए कोई महत्त्व नहीं रखता। आत्मतत्त्व की गवेषणा में भौतिक सम्पत्तियों का कोई मूल्य नहीं है।

भगवान् महावीर उग्रविहारी थे। उनके संयम में, तप में, चर्या में, निश्चय में तथा साधना में सभी में उग्रता थी। इसके विपरीत बुद्ध मध्यममार्गी थे। उन्होंने उग्रमार्ग छोड़कर मध्यम मार्ग अपना लिया। इस विषय में भी दो शब्द लिखना अप्रासंगिक न होगा।

संसार में लोग भिन्न भिन्न रुचि वाले हैं। कुछ ऐसे होते हैं जो कठिनाइयाँ नहीं सह सकते। जो कष्टों से घबरा उठते हैं। उनके लिए मध्यममार्ग ही उचित है। उग्रमार्ग अपना कर कष्ट आने पर यदि मन में ग्लानि उत्पन्न हो जाती है, मनुष्य अपने को दुखी हुआ-सा समझता है, या लिए हुए व्रत के लिए पछताता है तो उससे आत्मा निर्बल तथा निरुत्साह बन जाती है। इसलिए अपनी शक्ति तथा उत्साह के अनुसार ही व्रत लेना चाहिए। ऐसे व्यक्तियों के लिए उग्रमार्ग उपयुक्त नहीं होता।

किन्तु कुछ लोग ऐसे भी हैं जिन्हें कष्ट सहने में आनन्द आता है। जिन्हें कठिनाइयाँ दुगुना प्रोत्साहित करती हैं। जिन्हें दुःख अधिक दृढ़ बना देते हैं। प्रहार जितना प्रबल होगा वे उतने ही कठोर चट्टान बनते जायेंगे। महावीर उन्हीं महापुरुषों में प्रमुख स्थान रखते थे। उन्हें कष्ट सकुल-जीवन व्यतीत करने के लिए किसी ने बाध्य नहीं किया था। उस मार्ग को उन्होंने स्वयं जान कर अपनाया था। वे आदर्शों को आदर्श मात्र न रहने देना चाहते थे। वे उन्हें व्यावहारिक सत्य बना देना चाहते थे। यही तो जैनदर्शन की विशेषता है। यहाँ जीवन के उच्चतम आदर्श ध्रुव तारा नहीं हैं जिसे देखकर आगे बढ़ा जाता है किन्तु वहाँ पहुँचा नहीं जाता। यहाँ तो प्रत्येक आदर्श व्यावहारिक सत्य है। जिन महापुरुषों ने उसे जीवन में उतारकर बताया है वे ही जैन के कर्णधार हुए हैं। महावीर पूर्ण अहिंसक होने पर भी अपने प्रति कठोर थे।

बुद्ध के जीवन में मधुरता है, उदारता है, दोष तथा दुर्बलताओं के लिए सहनशीलता है। महावीर इन बातों को शिथिलता समझते हैं। उनमें अपने शरीर के प्रति भी कोई करुणा नहीं है। दुर्बलताओं के लिए कोई स्थान नहीं है। वे स्वयं जितने कठोर हैं, उनकी संघ व्यवस्था भी उतनी ही कठोर है।

अहिंसावाद में जैनदर्शन दूसरे सभी धर्मों से आगे बढ़ा हुआ है। चलते फिरते प्राणियों का तो कहना ही क्या। यहाँ पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु तथा वनस्पति के जीवों की भी हिंसा के त्याग का उपदेश दिया गया है। यहाँ हिंसा का अर्थ समझ लेना आवश्यक है।

हिंसा का अर्थ सिर्फ किसी को मारना ही नहीं है। मारना तो द्रव्यहिंसा है, जो भावहिंसा का बाह्यरूप है। जैन शास्त्रों में

तण्डुल मत्स्य का वर्णन आता है जो बिना किसी जीव को मारे भी क्रूरतम हिंसकों में गिना गया है। उसे सातवें नरक का अधिकारी माना है। दूसरी तरफ कई चक्रवर्ती नरेश युद्ध में हजारों मनुष्यों का संहार करके भी मोक्ष के अधिकारी बने हैं। एक स्वास्थ्य प्रदान करने के लिए रोगी का ऑपरेशन करता है। रोगी मर जाता है। फिर भी डाक्टर हिंसक नहीं है। दूसरा व्यक्ति रोगी को मारने के लिए विष दे देता है। परिणाम उल्टा होने पर भी वह हिंसक है।

हिंसा का मुख्य भावरूप अर्थ है दूसरे को कष्ट या हानि पहुँचाने की भावना। बिना कुछ किए भी यदि हमारी भावना खराब है तो हम हिंसक हैं। शत्रु के प्रति भी हमारी भावना बुरी न होनी चाहिए। अहिंसा का वास्तविक अर्थ समझ लेने के बाद इन प्रश्नों के लिए गुञ्जायश नहीं रहती कि आततायी के आने पर हम क्या करें? आप समाज में न्याय नीति की प्रतिष्ठा कायम रखने के लिए किसी भी उपाय को काम में ला सकते हैं। हमारी भावना सदा अच्छी रहनी चाहिए।

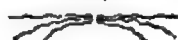
आचाराङ्ग सूत्र जैन आगमों में प्रथम अंग है और प्राचीनता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसमें मुख्यरूप से साधुओं के आचार का वर्णन है। भगवान् महावीर की चर्या से हमें यह समझने में सहायता मिलती कि महावीर की साधना का रहस्य क्या था? उसी रहस्य पर जैन संस्कृति की इमारत खड़ी है। इसलिए जैन संस्कृति को समझने के लिए भी यह बहुत उपयोगी है।

शास्त्र

रक्षाबन्धन २००४
इन्द्रलोक, भिवानी

भगवान् महावीर की साधना

विषयानुक्रम





भगवान् महावीर की साधना

[श्री आचाराङ्ग-सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध का नवम अध्ययन

अकारादि अनुक्रमणिका



श्रीमान् जुगराजजी साहिब पारख



आप तीवरी (मारवाड) के एक बहुत अच्छे एवं
मनस्क प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। डूँडाइचा (खानदेश) में
आपकी बहुत अच्छी पेढी चल रही है। आपने
इस पुस्तक के प्रकाशन के निमित्त अपनी स्व
र्गीया माताजी की पुण्य-स्मृति में २००)
रुपये भेट किए हैं। एतदर्थ धन्यवाद।

श्रमण भगवान् महावीर के जीवन की

— संहिता —

जन्म—वि० सं० ५४२ पूर्व, चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के रात के समय।

दीक्षा—अपने जीवन के ३० वर्ष पूरे हो जाने के बाद, मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी के दिन।

तपस्या—

(१) एक—षाण्मासिक उपवास
(२) एक—पंचदिवस-न्यून षाण्मासिक उपवास
(३) नौ—चार मास के उपवास
(४) छः—ढाई मास के उपवास
(५) दो—डेढ़ मास के उपवास
(६) बारह—एक मास के उपवास
(७) बहत्तर—पन्द्रह दिन के उपवास
(८) एक सर्वतोभद्र प्रतिमा (१० दिन की)
(९) एक महाभद्र प्रतिमा (चार दिन की)
(१०) बारह—अष्टम भक्त (तेले)
(११) दो सौ उनतीस षष्ठ भक्त (बेले)
(१२) एक—भद्र प्रतिमा (दो दिन की)

कुल तपस्या १२ वर्ष ६ मास १५ दिन।
पारणा—३५०,
कैवल्य प्राप्ति-वैशाख शुक्ला दशमी

चौमासे की तालिका—

(१) अस्थिकग्राम
(२) नालन्दा
(३) चंपा
(४) पृष्ठ चंपा
(५) भद्दिलपुर
(६) भद्रिकापुर
(७) आलभिका
(८) राजगृह
(९) अनार्य प्रदेश के जंगल में
(१०) श्रावस्ती
(११) वैशाली
(१२) चंपा
(१३) राजगृह
(१४) वैशाली
(१५) वाणिज्यग्राम
(१६) राजगृह
(१७) वाणिज्यग्राम
(१८) राजगृह
(१९) राजगृह
(२०) वैशाली
(२१) वाणिज्यग्राम
(२२) राजगृह
(२३) वाणिज्यग्राम
(२४) राजगृह
(२५) मिथिला
(२६) मिथिला
(२७) मिथिला
(२८) वाणिज्यग्राम
(२९) राजगृह
(३०) वाणिज्यग्राम
(३१) वैशाली
(३२) वैशाली
(३३) राजगृह
(३४) नालन्दा
(३५) वैशाली
(३६) मिथिला
(३७) राजगृह
(३८) नालंदा
(३९) मिथिला
(४०) मिथिला
(४१) राजगृह
(४२) पावापुरी

निर्वाण—अपने जीवन के ७२ वें वर्ष में कार्तिक अमावस्या की रात में।

✱ णमोत्थु णं तस्स समणस्स भगवओ महावीरस्स ✱

भगवान्

∷ महावीर की साधना ∷

[आचारांग सूत्र के नौवें अध्ययन के आधार पर]



पढमो उद्देसो



—[विहार]—

सिसिरंसि अद्ध-पडिवन्ने
त वोसिज्ज वत्थमणगारे ।
पसारित्तु बाहू परक्कमे
णो अवलंबियाण खधमि ।



(१)

अहा-सुय वइस्सामि,
जहा से समणे भगव उट्ठाए।
सखाए तसि हेमन्ते,
अहुणा पव्वइए रीइत्था ॥

(२)

णो चेविमेण वत्थेण,
पिहिस्सामि तसि हेमते।
से पारए आवकहाए,
एय खु अणु धम्मिय तस्स ॥

(३)

चत्तारि साहिए मासे,
बहवे पाण-जाइया आगम्म।
अभिरुज्झ काय विहरिंसु,
आरुसिया ण तत्थ हिंसिंसु ॥

मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी को तीसरे प्रहर के समय सिद्धार्थ नन्दन, त्रिशला के आत्मज, नन्दिवर्धन के अनुज राजकुमार वर्द्धमान ने क्षत्रिय कुण्ड के बाहर उद्यान में दीक्षा अङ्गीकार की। क्षत्रिय-कुण्ड, विदेह की राजधानी वैशाली का उपनगर था। मुनिव्रत अङ्गीकार कर भगवान् ने कमरी ग्राम की ओर विहार किया। उनकी इस घटना का निर्देश करते हुए सुधर्मास्वामी अपने प्रिय शिष्य जम्बू स्वामी से कह रहे हैं —

(१)

सुधर्मा स्वामी ने कहा—जम्बू !

भगवान् महावीर की प्रथम साधना का वृत्तान्त मैंने जैसा सुना है वैसा ही तुमसे कहता हूँ। उन्होंने हेमन्त ऋतु में दीक्षा ग्रहण की और विहार कर दिया।

(२)

भगवान् के मन में यह नहीं था कि शीतकाल में यह †वस्त्र ओढ़ने के काम आएगा। परीषह तथा उपसर्गों का स्वागत करने के लिए वे अपने जीवन को खपा देना चाहते थे। उनके लिए वस्त्र धारण केवल परम्परा का पालन था।

(३)

चार महीने से भी अधिक समय तक वस्त्र बहुत सुगन्ध देता रहा। उससे आकृष्ट होकर बहुत से भौंरे आदि प्राणी भगवान् के चारों ओर मंडराया करते थे। वे भगवान् के शरीर पर बैठ जाते, क्रोध में आकर काटते और उन्हें विविध प्रकार के कष्ट देते।

---

† जैन परम्परा के अनुसार जब तीर्थङ्कर दीक्षा लेते हैं तो इन्द्र उन्हें एक वस्त्र समर्पित करता है जिसे 'देवदूष्य' कहते हैं। यद्यपि तीर्थङ्कर वस्त्ररहित जिनकल्पी साधु ही होते हैं फिर भी इन्द्र वस्त्र को कंधे पर रखकर चला जाता है। वह वस्त्र अपने आप जब तक पड़ा रहता है तीर्थङ्कर उसे नहीं हटाते। जब कहीं गिर जाता है तो उसे वे उठाते भी नहीं।

(४)

संवच्छर साहियं मासं,

जं न रिक्कासि वत्थगं भगवं।

अचेलए तओ चाई,

तं वोसिरिज्ज वत्थमणगारे ॥

(५)

अदु *पोरिसिं तिरियं भित्तिं,

चक्खु-मासज्ज अंतसो झायइ।

अह चक्खु-भीया सहिया ते,

हंता हंता बहवे कंदिंसु ॥

(६)

सयणेहिं वितिमिस्सेहिं,

इत्थिओ तत्थ से परिन्नाया।

×सागारियं ण सेवेइ य,

से सयं पवेसिया झाइ ॥

(७)

जे के इमे अगारत्था,

मिस्सीभावं पहाय से झाइ।

पुट्ठोवि नाभि-भासिंसु,

गच्छइ नाइवत्तइ अंजू ॥

---

* पुरुष प्रमाण अर्थात् साढ़े तीन हाथ। ×मैथुन।

(४)

तेरह मास तक भगवान् ने उस वस्त्र को नहीं छोड़ा। इसके बाद उसको छोड़कर अचेलक हो गये।

(५)

चलते समय भगवान् अपनी दृष्टि सामने की ओर साढ़े तीन हाथ मार्ग पर जमाए रखते थे। वे बड़े सावधान होकर चलते थे। उस समय उन्हें देखकर बालक डर जाते। अतः वे भगवान् पर पत्थर आदि फेंकते और चिल्लाते।

(६)

कभी कभी भगवान को गृहस्थों तथा अन्य तीर्थिकों से मिश्रित वसतियों में रहना पड़ता था। वहाँ उनसे स्त्रियाँ भोग के लिए प्रार्थना करती थीं। परन्तु भगवान् स्त्रियों को संयम में बाधा पहुँचाने वाली समझते थे इसलिए वे कभी ब्रह्मचर्य से विचलित नहीं हुए। ऐसे समय में भी वे आत्म चिन्तन में ही लीन रहते थे।

(७)

गृहस्थों के संसर्ग से दूर रहकर भगवान् सदा ध्यान-मग्न रहते थे। पूछने पर भी न बोलते थे। अपने ही पथ पर चलते थे। सरल स्वभावी भगवान् सदा संयम मार्ग पर अग्रसर रहते थे।

(८)

णो सुगर-मेय-मेगेसिं,
नाभि-भासेइ अभि-वायमाणे ।
हय पुव्वे तत्थ दडेहिं,
लूसिय-पुव्वे अप्प-पुण्णेहिं ॥

(६)

फरुसाइ दुतितिक्खाइ,
अइ अच मुणी परकममाणे ।
आघाय-नट्ट-गीयाइ,
दड-जुद्धाइं मुट्ठि-जुद्धाइ ॥

(१०)

गढिए मिहु-कहासु,
समयम्मि नाय-सुए विसोगे अदक्खु ।
एयाइ से उरालाइ,
गच्छइ नायपुत्ते *असरणाए ॥

(११)

अवि साहिए दुवे वासे,
सीओदे अभुच्चा निक्खते ।
एगत्त-गए ×पिहियच्चे,
से अहिन्नाय-दसणे सते ॥

* असरणा—सयम × शान्त

(८)

भगवान् ने जिस साधना को अपनाया था वह सबके लिए सुकर नहीं थी। जो उन्हें नमस्कार करता वे उससे भी न बोलते। अल्पपुण्य व्यक्तियों ने कई बार उन्हें दण्डों से पीटा और अनेक प्रकार से तङ्ग किया।

(९)

अत्यन्त कठोर और असह्य परीषहों से भी वे कभी नहीं घबराये। अपने संयम मार्ग में दृढ़ रहे। नाच, गान तथा कथा कहानियों में उन्हें कोई रुचि न थी। दण्ड-युद्ध तथा मुष्टि-युद्ध देखने में भी कोई उत्सुकता न थी।

(१०)

दम्पतियों की गुप्त बातें सुनने का अवसर आने पर भी भगवान सदा राग रहित रहे। उन्होंने मध्यस्थ भाव को कभी नहीं छोड़ा। किसी भी प्रकार के अनुकूल तथा प्रतिकूल परीषह उन्हें संयम से विचलित न कर सके। वे सदा अपने जीवन को संयम-मार्ग में ही लगाते रहे।

(११)

भगवान् को गृहस्थाश्रम में भी संयमी जीवन बिताते हुए दो वर्ष से अधिक समय हो गया था। उन दिनों उन्होंने कच्चा (सचित्त) पानी नहीं पिया। हृदय में समस्त जीवों के प्रति एकत्व की भावना जागृत की। कषायाग्नि को शान्त किया। आत्मा को सम्यक्त्व की भावना से भावित किया तथा इन्द्रियों को अत्यन्त शान्त बना लिया।

(१२, १३)

पुढविं च आउकाय च,
तेउकाय च वाउकाय च।
पणगाइ बीय-हरियाइं,
तसकाय च सव्वसो नच्चा ॥
"एयाइं सन्ति" पडिलेह,
'चित्तमन्ताइं' से अभिन्नाय।
परिवज्जिय विहरित्था,
इइ सखाय से महावीरे ॥

(१४)

अदु *थावरा तसत्ताए,
×तसा य थावर-त्ताए।
अदुवा सव्वजोणिया सत्ता,
कम्मुणा कप्पिया पुढो बाला ॥

(१५)

भगवं च एव-मन्नेसी,
सोवहिए हु लुप्पइ बाले।
कम्म च सव्वसो नच्चा,
त पडियाइक्खे पावग भगवं ॥

---

* स्थावर —पृथ्वी आदि एकेन्द्रिय जीव जो स्वय चल फिर नहीं सकते।
× त्रस :—स्वय चलने फिरने का सामर्थ्य रखने वाले द्वीन्द्रिय आदि जीव।

(१२, १३)

भगवान् महावीर ने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, शैवाल, बीज आदि सभी वनस्पतियों तथा चलते फिरते सभी प्राणियों में आत्मा समझी। इसलिए वे उनकी हिंसा से बचते हुए विचरते थे।

(१४)

भगवान् महावीर ने अपने ज्ञान में जान लिया कि संसार के सभी जीव अपने अपने कर्मानुसार स्थावर से त्रस और त्रस से स्थावर बन जाते हैं। सभी जीव अपने अपने कर्मों के अनुसार भिन्न भिन्न योनियों में परिभ्रमण करते रहते हैं।

(१५)

भगवान् ने यह जाना कि अज्ञानी जीव द्रव्य और भावरूप उपाधियों के कारण कर्मों के बन्धन में फँसे रहते हैं। इसलिए उन्होंने कर्मों को जानकर पाप तथा उनके हेतुभूत उपाधियों का त्याग कर दिया।

(१६)

दुविह समेच मेहावी,
    किरिय-मक्खाय ऽणेलिस नाणी ।
=आयाण-सोय-×अइवाय सोय,
    जोग च सव्वसो णच्चा ॥

(१७)

*अइवत्तियं —अणाउट्टिं,
    सय-मन्नेसिं अकरणयाए ।
जस्सित्थिओ परिन्नाया,
    सव्वकम्मवहाउ से अदक्खू ॥

(१८)

अहाकड न से सेवे,
    सव्वसो कम्म-अदक्खू ।
ज किंचि पावग भगव,
    त अकुव्व +वियड भुञ्जित्था ॥

=(आयाण) आदान स्रोत —इन्द्रियों की दुष्ट प्रवृत्ति से होने वाला कर्म प्रवाह ।
×अतिपात स्रोत —हिंसाजन्य कर्म प्रवाह ।
*अतिपातिका —निर्दोष ।
—अनाकुट्टि —अहिंसा ।
+विकट—प्रासुक ।

(१६)

(इन्द्रियों के विषयभोग तथा हिंसादि क्रूर कार्यों को कर्म बंधन का कारण समझकर भगवान् ने इन दोनों से भिन्न संयम मार्ग का उपदेश दिया।)

(१७)

भगवान ने स्वयं शुद्ध अहिंसा का पालन किया और दूसरे साधकों के लिए भी हिंसा से बचे रहने का उपदेश दिया।

(भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट इस मार्ग को वही व्यक्ति समझ सकता है जो विषयभोगों का नशा करने वाली स्त्रियों को पापों का मूल समझता है।)

(१८)

कर्मबन्ध का कारण जानकर भगवान् ने कभी †'आधाकर्म' आहार का सेवन नहीं किया। किसी प्रकार का पाप न करते हुए भगवान् ने सदा निर्दोष आहार ग्रहण किया।

† आधाकर्म (यथाकृत)—अर्थात् साधु के लिए बनाया …

(१६)

णो सेवइ य परवत्थ,
पर-पाए वि से न भुञ्जित्था।
परिवज्जियाण ओ-माण,
गच्छइ †संखडिं असरणयाए॥

(२०)

मायण्णे असण-पाणस्स, नाणुगिद्धे रसेसु अपडिन्ने।
अच्छिंपि नो पमज्जिज्जा, णोवि य कंडूयए मुणी गाय॥

(२१)

अप्प तिरिय पेहाए,
अप्प पिट्ठओ पेहाए।
अप्प बुइएऽपडि-भाणी,
पथ-पेही चरे जयमाणे॥

(२२)

सिसिरंसि अद्ध-पडिवन्ने, तं वोसिज्ज वत्थ-मणगारे।
पसारित्तु बाहुं परक्कमे, नो अवलंबियाण कंधंमि॥

(२३)

एस विही अणुक्कन्तो,
माहणेण मईमया।
बहुसो अपडिन्नेण,
भगवया एव रीयंति॥

---

†संखडि (संस्कृति)—भोजन गृह।

(१६)

भगवान् ने न किसी दूसरे का वस्त्र काम में लिया और न कभी दूसरे के पात्र में भोजन ही किया। मानापमान की परवाह न करके वे अदीन मन से भिक्षा के लिए भोजनालयों में जाते थे।

(२०)

भगवान् भोजन और पान की मात्रा का ध्यान रखते थे। न रसों में आसक्त होते थे और न वस्तु विशेष की आकांक्षा ही करते थे। उन्होंने तिनका आदि पड़ने पर न कभी आँख को ममला और न कभी अङ्गों को ही खुजलाया।

(२१)

चलते समय भगवान् न तो कभी इधर उधर देखते थे और न कभी पीछे। किसी के पूछने पर बहुत कम बोलते थे। मार्ग में ध्यान जमाये हुए यतनापूर्वक चले जाते थे।

(२२)

शीतकाल में वस्त्र छोड़ देने पर भी भगवान् खुली भुजाओं से चलते थे। हाथों को कभी बगलों में नहीं दबाते थे।

(२३)

मतिमान, आत्मनिष्ठ एवं विषयों की लालसा से रहित भगवान् महावीर जिस मार्ग पर चले थे, सभी मुमुक्षु उसी मार्ग पर चलते हैं।



दुइयो उद्देसो



[वसति]



अहियासए सया समिए,
फासाइ विरूव-रूवाइ ।
अरइ रइ अभिभूय,
रीयइ माहणे अवहुवाई ॥

(१)

चरिया-मणाइ सिआओ,
एगइयाओ जाओ बुइयाओ।
आइक्ख ताइ मयणा—
मणाइ जाइ सेविन्या से महावीरे ॥

(२)

*आवेसण- ×सभा- —पवासु,
+पणिय सालासु एगया वासो।
अदुवा =पलियठाणेसु,
¹पलाल-पुञ्जेसु एगया वासो ॥

(३)

आगतारे आरामागारे,
तह य नगरे वा एगया वासो।
सुमाणे सुन्नगारे वा,
रुक्खमूले व एगया वासो ॥

---

*शून्यगृह ×पान्थशाला धर्मशाला —प्याऊ
+हाट =कर्मस्थान—जहाँ लोहार आदि अपना काम करते हैं
¹घास के बने हुए मच।

(१)

शिष्य जम्बू ने अपने धर्माचार्य सुधर्मा स्वामी से पूछा— भगवन्!

श्रमण भगवान् महावीर अपने तपस्वी जीवन में कहाँ कहाँ घूमे? उन्होंने कहाँ निवास किया? शयन आसन आदि के विषय में उनकी क्या चर्या रही? तनिक इस विषय से मुझे परिचित कराने की कृपा कीजिये।

(२)

सुधर्मा स्वामी ने उत्तर दिया, प्रिय जम्बू!

भगवान् महावीर विचरते हुए कभी तो शून्यगृहों में ठहर जाते थे और कभी पाठशालाओं में, कभी प्रपाओं में, कभी पण्यशालाओं में, कभी कर्मस्थानों में तथा कभी घास के बने हुए मंचों के नीचे निवास करते थे।

(३)

वे कभी सरायों में, कभी उद्यान गृहों में, कभी नगर में, कभी श्मशान में, कभी सूने घर में तथा कभी वृक्ष के नीचे ही ठहर जाते थे।

(४)

एएहिं मुणी सयणेहिं,
समणे आसी पतेलसवासे ।
राइं दिवं पि जयमाणे,
अप्पमत्ते समाहिए भाइ ॥

(५)

णिद्दं पि णो पगामए,
सेवइ भगवं उट्ठाए ।
जग्गावइ य अप्पाणं,
ईसिं साईय अपडिन्ने ॥

(६)

संबुज्झमाणे पुणरवि,
आसिंसु भगवं उट्ठाए ।
निक्खम्म एगया राओ,
बहिं चकमिया मुहुत्तागं ॥

(७)

सयणेहिं तत्थुवसग्गा,
भीमा आसी अणेगरूवा य ।
संसप्पगा य जे पाणा,
अदुवा जे पक्खिणो उवचरंति ॥

(४)

लगभग तरह वर्ष तक भगवान् इस प्रकार के स्थानों में विचरते रहे। वे कैवल्य प्राप्ति के लिए दिनरात प्रयत्न करते रहे। उन्होंने कभी प्रमाद नहीं किया और व सदा समाधि तथा ध्यान में मग्न रहे।

(५)

सयमी जीवन स्वीकार करन के बाद भगवान् ने प्राय निन्द्रा का सेवन नहीं किया। बहुत थोड़ा सोते हुए तथा आहार विहार या शयन आदि के विषय मे किसी प्रकार की लालसा न रखते हुए वे निरन्तर आत्मा को जगाते रहते थे।

(६)

भगवान् निद्रा को प्रमाद तथा आलस्य का कारण मानते थे। इसलिए वे रात्रि में उठकर बैठ जाते। फिर भी यदि नींद आती तो ठण्डी रात म बाहर निकल जाते और थोडी देर घूमते रहते।

(७)

भगवान् प्राय निर्जन स्थानों म रहते थे, अत उन्हें विविध प्रकार के उपसर्गों का सामना करना पड़ता था। सर्प, नवला आदि अनक विषैले जन्तु तथा गिद्ध आदि पक्षी उनक आस पास घूमते रहते थे और उन्हें कष्ट देते थे।

(८)

अदु कुचरा उवचरंति,
गामरक्खा य सत्तिहत्था य।
अदु गामिया उवसग्गा,
इत्थी एगइया पुरिसा य॥

(९, १०)

इह लोइयाइं परलोइयाइं, भीमाइं अणेगरूवाइं।
अवि सुब्भि-दुब्भि-गंधाइं, सद्दाइं अणेगरूवाइं॥
अहियासए सया समिए, फासाइं विरूवरूवाइं।
अरइं रइं अभि-भूय, रीयइ माहणे अबहुवाई॥

(११)

स जणेहिं तत्थ पुच्छिंसु,
एगचरा वि एगया राओ।
अव्वाहिए कसाइत्था,
पेहमाणे समाहिं अपडिन्ने॥

(१२)

अयमंतरंसि को एत्थ ?
अहमंसि त्ति भिक्खू आहट्टु।
अयमुत्तमे से धम्मे,
तुसिणीए कसाइए झाई॥

(८)

चोर, व्यभिचारी तथा सशस्त्र ग्रामरक्षक भी भगवान् को बहुत तङ्ग करते थे। कभी भगवान् को गाँव में रहने का प्रसङ्ग आता तो वहाँ भी उन्हें बहुत उपसर्ग सहने पड़ते थे। गाँव में रहने वाले स्त्री और पुरुष प्रायः सभी भगवान् को सताया करते थे।

(९, १०)

सदा समितियों का सम्यक् पालन करने वाले भगवान् ने अनेक प्रकार के ऐहलौकिक तथा पारलौकिक भयङ्कर उपसर्ग सहे। सुगन्ध, दुर्गन्ध, अनेक प्रकार के अनुकूल तथा प्रतिकूल शब्द तथा विविध प्रकार के स्पर्श उनके लिए समान थे। रति तथा अरति पर विजय प्राप्त करके आत्मलीन होकर मितभाषी रहते हुए वे संयम मार्ग में विचरे।

(११)

भगवान् अकेले विचरते थे। रात में कई बार लोग आकर पूछते—तुम कौन हो? यहाँ क्यों खड़े हो? भगवान् उत्तर न देते तो वे क्रोध में आकर विविध प्रकार के कष्ट देते। फिर भी वे शान्तचित्त होकर देखते रहते। मन में किसी प्रकार का विकार न आने देते।

(१२)

कई बार भगवान् जब सूने मकान में ठहरे होते, लोग आकर पूछते—अन्दर कौन है? भगवान् उत्तर देते—'मैं एक भिक्षु हूँ।' इस पर वे क्रुद्ध हो उठते और भगवान् को कष्ट देते, किन्तु भगवान् शान्त रहते। उस समय मौन रहना ही वे अपना परम धर्म मानते।

(१३, १४, १५)

जंसि प्पेगे पवेयंति,
मिसिरे मारुए पवायते।
तंसि प्पेगे अणगारा,
हिमवाये निवायमेसंति॥

संघाडीओ पवेसिस्सामो,
एहा य समादहमाणा।
पिहिया व सक्खामो,
अइ दुक्खं हिमग-संफासा॥
तंसि भगवं अपडिन्ने,
अहे वियडे अहियासए।
दविए निक्खम्म एगया,
राओ ठाइए भगवं समियाए॥

(१६)

एस विही अणुक्कंतो,
माहणेण मईमया।
बहुसो अपडिन्नेण,
भगवया एवं रीयंति॥

(१३, १४, १५)

ठंडी हवा चलने पर लोग जब काँपने लगते हैं, जिस समय साधु भी वायु रहित स्थान को ढूँढने लगते हैं और भयङ्कर शीत जब दुःख देने लगता है, लोग उससे बचने के लिए रजाई में घुस जाते हैं, लकडियाँ जलाते हैं या अपने को ढँके रहते हैं। उस विकट शीत को भी भगवान ने समभावपूर्वक सहा। मन में किसी प्रकार का क्षोभ न आने दिया। संयमी भगवान् गाँव से बाहर खड़े-खड़े रात बिता देते। मन को पूर्ण शान्त रखते।

(१६)

मतिमान, आत्मनिष्ठ एवं विषयों की लालसा से रहित भगवान् जिस मार्ग पर चले, सभी मुमुक्षु इसी मार्ग पर चलते हैं।



तइयो उद्देसो

[परिषह-सहन]



सूरो संगाम-सीसे वा,
 संवुडे तत्थ से महावीरे।
पडिसेवमाणे फरुसाइ,
 अचले भगव रीइत्था ॥

(१)
तण-फासे सीय-फासे य,
तेउ-फासे य दंस-मसगे य।
अहियासए सया समिए,
फासाइं विरूवरूवाइं॥

(२)
अह दुच्चर-लाढ-मचारी—
वज्ज-भूमिं च सुब्भ-भूमिं च।
पंतं सिज्जं सेविंसु,
आसणगाणि चेव पंताणि॥

(३)
लाढेसु तस्सुवसग्गा,
बहवे जाणवया लूसिंसु।
अह लूह-देसिए भत्ते,
कुक्कुरा तत्थ हिंसिंसु निवइंसु॥

(४)
अप्पे जणे निवारेइ,
लूसणए सुणए दसमाणे।
छुच्छु कारंति आहंसु,
समणं कुक्कुरा दसंतु त्ति॥

(१)

समितियों का पालन करते हुए भगवान शीत, उष्ण, तृण स्पर्श तथा डाँस मच्छर आदि के अनुकूल तथा प्रतिकूल स्पर्शों को बिना किसी राग-द्वेष के सहते थे।

(२)

घूमते हुए भगवान् एक बार †लाढ़ देश में चले गये थे। वह देश साधुओं के लिए दुर्गम था। उस देश में ‡वज्र भूमि और *शुभ्रभूमि नाम के दो विभाग थे। भगवान् दोनों विभागों में घूमे थे। वहाँ उन्हें कष्टप्रद मकानों में ठहरना पड़ता था तथा विकट एवं ऊबड़ खाबड़ स्थानों पर बैठना पड़ता था।

(३)

लाढ़ देश में भगवान् को अनेक प्रकार के उपसर्ग सहने पड़े। उस देश के मनुष्य भगवान् को हैरान करते तथा वहाँ उन्हें खाने के लिए रूखा-सूखा भोजन देते थे। भगवान् को देखकर कुत्ते
1 उन पर झपटते थे और उन्हें काट खाते थे।

(४)

वहाँ ऐसे बहुत थोड़े व्यक्ति थे जो भगवान को काटते हुए व नोंचते हुए कुत्तों को हटाते। इसके विपरीत वे कुत्तों को छुछकार कर भगवान् के पीछे लगा देते और काटने के लिए प्रेरित करते।

---

†लाढ़ (राढ़)—मुर्शिदाबाद के आस पास का पश्चिमी बङ्गाल।

‡वज्र भूमि—बङ्गाल का वीरभूम प्रदेश जो महावीर के समय में अनार्य कहलाता था।

*शुभ्र भूमि (शुद्ध भूमि)— प्राचीन राढ़ देश की वह भूमि जहाँ आर्य लोगों की आबादी अधिक प्रमाण में थी। सम्भवत यह मुर्शिदाबाद के निकट का भूमिभाग रहा होगा।

(५)

एलिक्खए जणा भुज्जो,
बहवे वज्ज-भूमि फरुसासी।
लट्ठिं गहाय *नालिय,
+समणा तत्थ य विहरिंसु ॥

(६)

एव पि तत्थ विहरता,
पुट्ठ-पुव्वा अहेसि सुणिएहिं।
सलुचमाणा सुणिएहिं,
दुचराणि तत्थ लाढेहिं ॥

(७)

निहाय ×दड पाणेहिं,
तं काय वोसरिज्जमणगारे।
अह गामन्टए भगवते,
अहियासए अभिसमेचा ॥

(८)

नागो सगाम मीसे या, पारए तत्थ से महावीरे।
एव पि तत्थ लाढेहिं, अलद्ध-पुव्वो वि एगया गामो ॥

* नालिका—अपने शरीर प्रमाण से चार अगुल बड़ी लम्बी लाठी।
+ श्रमण—जैन या बौद्ध साधु।
× दड—मन, वचन और शरीर का अशुद्ध (हिंसामय) व्यापार।

(५)

यहाँ इस प्रकार के क्रूर प्रकृति वाले लोग अधिक थे। वज्र भूमि के लोग तामसभोजी थे, इसलिए उनका स्वभाव भी वैसा ही बन गया था। यहाँ दूसरे साधु लाठी या नालिका लेकर घूमते थे।

(६)

साधनों से युक्त होने पर भी उन्हें कुत्ते काट खाते थे और हैरान करते थे। लाढ़ देश में घूमना अत्यन्त दुष्कर था।

(७)

अनगार भगवान् महावीर उन प्राणियों पर किसी प्रकार का दुर्भाव नहीं लाते थे। उन्हें अपने शरीर पर भी कोई ममत्व न था। आत्म विकास का साधन मानकर वे ग्राम-सम्बन्धी सभी कष्टों को सहते थे।

(८)

जिस प्रकार संग्राम में हाथी शत्रु के प्रहारों की परवाह न करता हुआ आगे बढ़ता जाता है उसी प्रकार भगवान् भी लाढ़ देश में उपसर्गों की परवाह न करके विचरते रहे। कभी कभी तो उन्हें रहने के लिए गाँव भी न मिलता था और जंगल में ही रह जाना पड़ता था।

(६)

उवसकमत-मपडिन्न-
गामवियम्मि अप्पत्तं ।
पडिनिक्खमित्तु लूसिंसु,
एयओ पर पलेहिंचि ॥

(१०)

हय पुव्वो तत्थ दडेण,
अदुवा मुट्ठिणा अदु कुन्तफलेण ।
अदु लेलुणा कवालेण,
हता हता बहवे कंदिंसु ॥

(११)

मंसाणि छिन्न-पुव्वाणि,
उट्ठमिया एया काय ।
*परीसहाइ लुंचिंसु,
अदुवा पसुणा उवकरिंसु ॥

(१२)

उच्चालइय निहर्णिसु, अदुवा आसणाओ खलइंसु ।
वोसट्ठकाय-पणयामी, दुक्ख-सहे भगव अपडिन्ने ॥

---

*परीसह—साधु-जीवन में आते वाले कष्ट जिन्हें मुनि को शांतिपूर्वक -स
चाहिए ।

(९)

भगवान् जब किसी गाँव में जाते तो पास पहुँचने से पहले ही गाँव के लोग बाहर निकल कर उन्हें मारने पीटने लगते और अगले गाँव में चले जाने के लिए कहते।

(१०)

वे लोग भगवान् को दण्ड, मुष्टि, भाला, पत्थर तथा ठीकरों से मारते थे और खुश होकर चिल्लाते थे।

(११)

वहाँ लोगों ने भगवान् के शरीर को नौंच डाला। उनके शरीर पर विविध प्रकार के प्रहार किये। उनके लिए भयङ्कर परीषह उपस्थित किये और उन पर धूल तक फैंकी।

(१२)

उन लोगों ने भगवान् को ऊपर उछाल उछाल कर पटका। आसन पर बैठे हुए को धकेल दिया। फिर भी शरीर के ममत्व से रहित होकर भगवान् बिना किसी इच्छा के संयम मार्ग में स्थिर रहते हुए सभी दुःख सहते रहे।

(१३)

सूरो संगाम सीसे वा,
संवुडे तत्थ से महावीरे।
पडिसेवमाणे फरुसाइं,
अचले भगवं रीइत्था ॥

(१४)

एस विही अणुक्कतो,
माहणेण मईमया।
बहुसो अपडिन्नेण,
भगवया एव रीयंति ॥

---

(१३)

जिस प्रकार कवच पहने हुए शूरवीर का शरीर युद्ध में अक्षत रहता है, उसी प्रकार अचेल भगवान् महावीर ने अत्यन्त कठोर कष्टों को सहते हुए भी अपने संयम को अक्षत रक्खा।

(१४)

मतिमान्, आत्मनिष्ठ एवं विषयों की लालसा से रहित भगवान् महावीर जिस मार्ग पर चले थे, सभी मुमुक्षु इसी मार्ग पर चलते हैं।



चउत्थो उद्देसो

[तपश्चर्या]



अकसाई विगय-गेही य,
  सद्-रूवेसु अमुच्छिए झाइ ।
छउमत्थोवि परक्कममाणो,
  न पमायं सइंपि कुव्वित्था ॥

(१)

*ओमोयरिय चाएइ,
अपुट्ठे वि भगवं रोगेहिं।
पुट्ठे वा अपुट्ठे वा,
नो से साइज्जइ तेइच्छं ॥

(२)

संसोहणं च वमणं च,
गायब्भंगणं च सिणाणं च।
संबाहणं च न से कप्पे,
दंत-पक्खालणं च परिन्नाए ॥

(३)

विरए ×गाम-धम्मेहिं, रीयइ माहणे अबहुव
सिसिरंमि एगया भगवं, छायाए झाइ आसी

(४)

आयावइ य गिम्हाणं, अच्छइ +उक्कुडुए अभि
अदु जावइत्थ लूहेणं, ओयण-†मंथु-‡कुम्मासे

*अवमौदर्य—ऊनोदरी अल्पाहार।
×ग्रामधर्म—ग्राम —इन्द्रिय (श्रोत्र नेत्र घ्राण जिह्वा शरीर)
धर्म —इन्द्रियों के विषय (शब्द रूप गन्ध, रस
+उत्कुटुक —गोदोहासन।
†बेरों की कुट्टी।
‡कुल्माष —उड़द विशेष।

(१)

रोग आदि विशेष कारण न होने पर भी भगवान् ऊनोदरी अर्थात् अल्पाहार करते थे। रुग्ण हों या नीरोग, उन्होंने कभी चिकित्सा करना नहीं चाहा।

(२)

भगवान् ने कभी विरेचन अथवा वमन की औषधि का सेवन नहीं किया। उन्होंने न कभी मालिश कराई और न कभी स्नान ही किया। पगचंपी तथा दन्तप्रक्षालन से भी वे दूर रहे।

(३)

इन्द्रिय भोगों से विरक्त होकर भगवान् सदा आत्म चिन्तन में लीन रहते थे। वे बहुत कम बोलते थे। शीतकाल में भी वे छाया में ध्यान लगाया करते थे।

(४)

ग्रीष्म ऋतु में भगवान् आतापना लेते थे। सूर्य के सन्मुख उत्कुटुक आसन जमाकर बैठते थे। शरीर निर्वाह के लिए रूखे चावल, बेरों की कुट्टी और उड़द काम में लाते थे।

(५, ६, ७)

एयाणि तिन्नि पडिसेवे, अट्ठ मासे अ जावय भगवं।
अपिइत्थ एगया भगवं, अद्धमासं अदुवा मासं पि॥

अपि साहिए दुवे मासे, छप्पि मासे अदुवा विहरित्था।
राओवरायं अपडिन्ने, अन्नगिलायमेगया भुञ्जे॥

*छट्ठेण एगया भुञ्जे, अदुवा अट्ठमेण दसमेणं।
दुवालसमेण एगया, भुञ्जे पेहमाणे समाहिं अपडिन्ने॥

(८)

णच्चा णं से महावीरे,
नो वि य पावगं सयमकासी।
अन्नेहिं वा ण कारित्था,
कीरंतंपि नाणुजाणित्था॥

---

*षष्ठभक्त — छः समय के लिए आहार का त्याग। साधारणतया मनुष्य दिन में दो बार भोजन करता है। षष्ठभक्त में पहले दिन एक बार भोजन किया जाता है। दूसरे और तीसरे दिन सर्वथा निराहार रहा जाता है। चौथे दिन फिर एक बार भोजन किया जाता है। इस तरह षष्ठभक्त का अर्थ हुआ दो दिन का उपवास और पहले और चौथे दिन का एकाशन। शास्त्रों में सभी प्रकार के उपवासों का यही क्रम रक्खा गया है।

(५, ६, ७)

भगवान् ने आठ महीने इन्हीं तीन वस्तुओं पर निर्वाह किया। कई बार उन्होंने पन्द्रह दिन, एक महीना, दो महीने तथा छह महीने तक के लम्बे उपवास किये। दो दिन, तीन दिन, चार दिन तथा पाँच दिन आदि के उपवास तो उनके प्राय चलते ही रहते थे। पारने के दिन भी वे एक बार ही भोजन करते थे। वे मन में किसी प्रकार की ग्लानि न आने देते और न किसी प्रकार की कामना को ही स्थान देते। इस प्रकार के कठोर व्रत लेकर वे विचरते रहे।

(८)

भगवान् ने हेय और उपादेय के स्वरूप को जानकर न तो कभी स्वयं पाप किया, न किसी को करने के लिए कहा और न करने वाले को अच्छा ही समझा।

(९)

गाम पविस्से नगर वा,
घासमेसे कड परट्ठाए।
सुविसुद्धमेसिया भगवं,
आयत जोगयाए सेविथा ॥

(१०, ११, १२)

अदु वायसा दिगिंछत्ता,
जे अन्ने रसेसिणो सत्ता।
घासेसणाए चिट्ठति,
सयय निवइए य पेहाए ॥
अदुवा माहणं च समणं वा,
*गामपिंडोलग च अतिहिं वा।
सोवाग-मूसियारिं वा,
कुक्कुर वावि विट्ठिय पुरओ ॥
वित्तिच्छेयं वज्जतो,
तेसिमप्पत्तियं परिहरतो।
मंद परक्कमे भगवं,
अहिंसमाणो घासमेसित्था ॥

---

* ग्राम पिण्डोलक—भिखमगा।

(९)

भगवान ग्राम में जाते या शहर में, सदा निर्दोष आहार की गवेषणा करते थे। वे अपने निमित्त से बने हुए आहार को कभी नहीं लेते थे। शुद्ध आहार पानी का भी वे मन, वचन, कायरूप तीनों योगों को वश में रखकर सेवन करते थे।

(१०, ११, १२)

भिक्षा के लिए घूमते समय भगवान यदि देखते कि भूखे कौए तथा दूसरे प्राणी भोजन के लिए इकट्ठे हो रहे हैं अथवा कोई ब्राह्मण, श्रमण भिखमंगा, अतिथि, चाण्डाल, कुत्ता, बिल्ली आदि खड़े हैं तो वे धीरे धीरे दूसरी ओर चले जाते। उनकी आजीविका में बाधा नहीं डालते और न उन्हें किसी प्रकार अप्रसन्न ही करते। इस प्रकार आहार प्राप्ति करते समय भी वे किसी को कष्ट या बाधा नहीं पहुँचाते थे और अहिंसा का पालन करते थे।

(१३)

अवि सूइयं वा सुक्कं वा, सीयं पिंडं पुराण-कुम्मासं ।
अदु बुक्कसं पुलागं वा, लद्धे पिंडे अलद्धे दविए ॥

(१४)

अवि झाइ से महावीरे, आसणत्थे *अकुक्कुए झाणं ।
उड्ढं अहे तिरियं च, पेहमाणे समाहि मपडिन्ने ॥

(१५)

अकसाई विगयगेही य, सद्दरूवेसु अमुच्छिए झाइ ।
×छउमत्थो वि परक्कममाणो, न पमायं सइं पि कुव्वित्था ॥

(१६)

सयमेव अभि समागम्म, आयतजोगमाय-सोहीए ।
अभिनिव्वुडे अमाइल्ले, आवकहं भगवं समियासी ॥

(१७)

एस विही अणुक्कंतो,
माहणेण मईमया ।
बहुसो अपडिन्नेण,
भगवया एवं रीयंति ॥

---

* अकुक्कुए—प्रसन्न मुख । × छद्मस्थ—जो सर्वज्ञ नहीं है ।

(१३)

भगवान् को भिक्षा में आर्द्र, सूखा, बासी, ठंडा, पुराना चाहे कैसा भी भोजन मिल जाता, वे उसी पर सन्तोष कर लेते और न मिलने पर भी उन्हें कोई दुःख न होता था।

(१४)

विविध आसन लगाकर ध्यान में बैठे हुए भगवान् महावीर मन पर किसी प्रकार का विकार न आने देते। विषयभोगों की लालसा से रहित होकर ऊपर, नीचे तथा इधर उधर लोक के स्वभाव को जानते हुए व समाधि में लीन रहते थे।

(१५)

भगवान कषाय रहित तथा रागशून्य थे। शब्द तथा रूप आदि में आसक्त नहीं होते थे। छद्मस्थ अवस्था में भी उन्होंने कभी प्रमाद नहीं किया।

(१६)

भगवान् ने स्वयमेव संसार का स्वरूप समझा। आत्म शुद्धि के साथ अपने योगों को पवित्र बनाया। वे जीवनभर माया रहित और शान्त बने रहे।

(१७)

मतिमान, आत्मनिष्ट एवं विषयों की लालसा से रहित भगवान महावीर जिस मार्ग पर चले थे, सभी मुमुक्षु इसी मार्ग पर चलते हैं।



श्री जालमसिंह मेड़तवाल द्वारा श्री गुरुकुल छापाखाना ब्यावर में मुद्रित।